E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

निरुक्त वेदाङ्ग

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

छः वेदाङ्गों में निरुक्त चौथे स्थान पर है, जो कि वेद पुरुषका श्रोत्र (कान) कहा गया है-**'निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते'**। इस विषय में वेद-भाष्यकार सायणाचार्य अपनी चतुर्वेदभाष्यभूमिका में कहते हैं कि **'अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्'** अर्थात् अर्थ-ज्ञानमें निरपेक्षता से पदों की व्युत्पत्ति जहाँ कही गयी है, वह निरुक्त है।

निरुक्त की शाब्दिकी निरुक्ति होगी- निःशेषरूप से जो कथित न हो, वह निरुक्त है। अतः जहाँ शिक्षा आदि वेदाङ्ग वेद के में बाह्य तत्त्वों का निरूपण करते हैं, वहीं निरुक्त वेद-विज्ञान के आन्तरिक स्वरूप को स्पष्टतः उद्घाटित करता है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि दूसरे वेदाङ्ग प्रायः विभिन्न सूत्रों में लिखे गये हैं, किंतु यह निरुक्त गद्य-शैली में लिखित है। दूसरी बात यह भी है कि वेदार्थ को यथार्थरूप से जानने में निघण्टु के अनन्तर निरुक्त का ही प्रमाण है। निरुक्त निघण्टु की भाष्यभूत टीका है। निघण्टुमें वेदके कठिन शब्दोंका समुच्चय है। इसे वैदिक कोश भी कह सकते हैं। निघण्टुकी संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद है। अभी उपलब्ध निघण्टु एक ही है और इसके ऊपर महर्षि यास्क-विरचित निरुक्त है। कुछ विद्वान् ऋषिप्रवर यास्क को ही निघण्टु का भी रचयिता मानते हैं, किंतु प्राचीन परम्परा के अनुशीलन से यह धारणा प्रमाणित नहीं होती। निरुक्त के प्रारम्भ में निघण्टु को 'समाम्नाय' कहा गया है। इस शब्द की जो व्याख्या दुर्गाचार्य महाशय ने की है, उस व्याख्या से तो उसकी प्राचीनता ही सिद्ध होती है। महाभारतके मोक्षधर्मपर्व में प्रजापति कश्यप इस निघण्टु के रचयिता कहे गये हैं। निघण्टु में पाँच अध्याय हैं। उनमें एक से तीन अध्याय तक नैघण्टुककाण्ड, चौथा अध्याय नैगमकाण्ड और पाँचवाँ अध्याय दैवतकाण्ड है। अभी निघण्टु की एक ही व्याख्या प्राप्त होती है, जिसके व्याख्याकार हैं 'देवराजयज्वा'।

निरुक्तकाल -

ऐतिहासिक दृष्टि से निघण्टुकाल के बाद ही निरुक्तकाल माना जाता है। इसी युगमें निरुक्त का वेदाङ्गत्व सिद्ध होता है। दुर्गाचार्यकृत दुर्गवृत्ति के अनुसार निरुक्तों की संख्या चौदह थी। यास्क के उपलब्ध निरुक्त में बारह निरुक्तकारोंका उल्लेख है। सम्प्रति यास्क-विरचित यही निरुक्त वेदाङ्ग का प्रतिनिधि स्वरूप ग्रन्थ है। निरुक्त में बारह अध्याय हैं और अन्त में परिशिष्ट रूप दो अध्याय हैं। इस प्रकार समग्र ग्रन्थ चौदह अध्यायोंमें विभक्त है।

यास्क की प्राचीनता के विषय में किसी प्रकारका संदेह नहीं है। ये महर्षि पाणिनि से भी प्राचीन हैं। महाभारतके शान्तिपर्वमें निरुक्तकारके रूपमें यास्कका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। निरुक्त में वैदिक शब्दों की निरुक्ति है। निरुक्ति-शब्दका अर्थ है 'व्युत्पत्ति'। निरुक्त का यह सर्वमान्य मत है कि प्रत्येक शब्द किसी-न-किसी धातु के साथ अवश्य सम्बद्ध रहता है। अतः निरुक्तकार शब्दों की व्युत्पत्ति प्रदर्शित कर धातु के साथ विभिन्न प्रत्ययों का निर्देश देते हैं। निरुक्त के अनुसार सभी शब्द व्युत्पन्न हैं। अर्थात् वे सभी शब्द किसी-न-किसी धातु से निर्मित हैं। वैयाकरण शाकटायनका भी यही मत है कि सभी शब्द धातु से उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक संज्ञापद के धातु से व्युत्पन्न होने के कारण यह आधार नितान्त वैज्ञानिक है। आजकल इसी का नाम 'भाषा-विज्ञान' है। इस विज्ञान की उन्नति पाश्चात्त्य जगत् में लगभग सौ वर्षके भीतर ही हुई है जबकि आज से तीन हजार वर्ष पूर्व वैदिक ऋषियों के द्वारा इस शास्त्र के सिद्धान्तों का वैज्ञानिक-रीतिसे निरूपण किया गया था।

निरुक्त और व्याकरणका सामञ्जस्य

निरुक्त-प्रणेता यास्काचार्य ने निरुक्त के प्रथम अध्याय में कहा है कि 'तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्यनम्'। इसी कारण वेदों के सम्यक् ज्ञान और अध्ययन के लिये निरुक्त तथा व्याकरण-इन दोनों की साहचर्यरूप से आवश्यकता होती है। व्याकरण का मुख्य प्रयोजन है शब्दों का शुद्धीकरण। निरुक्त व्याकरण के सभी प्रयोजनों को तो सिद्ध करता ही है, किंतु इसकी मुख्य विशेषता है शब्दार्थ का विवेचन करना। निरुक्त साधित शब्दों-धातुओं की एक विलक्षण कल्पना करके मौलिक अर्थ के अन्वेषण में सतत प्रयत्नशील रहता है। दूसरी बात यह है कि निरुक्त से धातु-पाठ के सभी

अर्थ उत्पन्न होते हैं, किंतु धातुओं के परिज्ञान के लिये निरुक्त भी व्याकरण अधीन है। अतः दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है।

कतिपय आचार्यों का अभिमत है कि जिन शब्दों वा उनके अर्थों के जड़-मूल का पता व्याकरण-शास्त्र से नहीं लगता उनकी उत्पत्ति के पता लगाने वाले शास्त्र को निर्वचन-शास्त्र या निरुक्त कहते हैं। हिन्दी में इस शास्त्र को भाषा-विज्ञान तथा अँगरेजी में Philology कहते हैं।

निरुक्त शास्त्र की रचना की आवश्यकता क्यों हुई, इसे भी जान लेना चाहिए। निरुक्तकार यास्क के स्थल विशेषों के संकेतों से जान पड़ता है कि वैदिक भाषा प्रचलित भाषा नहीं थी; अतः बहुत से शब्दों का प्रयोग ही जाता रहा है और बहुत से शब्दों का अर्थ बदल गया। इसलिए वेद मंत्रों का अर्थ विशद करने तथा प्रातिशाख्यों की त्रुटि दूर करने के निमित्त निशक्त शास्त्र की रचना करनी पड़ी।

निरुक्त में कठिन वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति दी गयी है तथा यह बतलाया गया है कि कौन सा शब्द किसी विशिष्ट अर्थ में क्यों रूढ़ हो गया है। निरुक्त का विषय है-वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश तथा धातु का उसके अर्थातिशय के साथ योग-

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगो तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।।

निरुक्तकार सभी शब्दों को धातुज अर्थात् धातु और प्रत्ययों के योग से उत्पन्न मानते हैं।

वैदिक देवताओं के विषय में भी निरुक्त में विवरण प्राप्त होते हैं। यास्क के अनुसार देवताओं के तीन वर्ग हैं-पृथिवी स्थानीय देवता, अन्तरिक्ष स्थानीय देवता तथा द्युलोक स्थानीय देवता।

भाषाविज्ञान, अर्थविज्ञान, शब्द–निर्वचनशास्त्र और शब्दव्युत्पति की दिशा में निरुक्त ने बड़ी गम्भीरता से विचार किया है। निरुक्त के प्रसिद्ध अध्येता डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा का कथन है-'यह सिद्धान्त ऐसी शान्तिप्रद विशेषता रखता है जिससे पता चलता है कि इसकी कई व्युत्पत्तियाँ उन शब्दों से सम्बन्ध रखती हैं जिनका सम्बन्ध या मूल प्राचीन भारतीय भाषा में प्राप्य न हो किन्तु दूसरी भारोपीय

भाषाओं में प्राप्त है'। मैक्समूलर ने तो यह विश्वास व्यक्त किया है कि यास्क ने जितने संतोषजनक रूप से अनेक शब्दों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला है, उतना आज के वैज्ञानिक युग में भी सम्भव नहीं है।

यास्क ने पदों के चार प्रकार माने हैं-नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। 'आख्यात' शब्द क्रियार्थक है। सभी नामों अथवा संज्ञा शब्दों को वे आख्यातज (अथवा धातुज) मानते हैं- 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि'। जब तक क्रिया का क्रम चल रहा है, वह 'भाव' है, किन्तु पूर्ण हो जाने पर वही 'सत्व' (अथवा नाम) में परिणत हो जाती है। पाणिनि के सदृश, यास्क भी उपसर्गों को द्योतक ही मानते हैं, अकेले उपसर्गों का कोई अर्थ नहीं है। यास्क ने उपर्युक्त सिद्धान्त को शाकटायन और निरुक्त परम्परा के नाम से प्रस्तुत किया है, किन्तु इसमें उनकी भी पूर्ण सहमति प्रतीत होती है। उपसर्ग के योग से नाम और आख्यात में क्या परिवर्तन होता है, इसे उन्होंने पृथक्-पृथक् स्पष्ट करने की चेष्टा की है। निपातों के उन्होंने तीन भेद माने हैं–उपमार्थक, कर्मोपसंग्रहार्थक (समुच्चयार्थक) तथा पदपूरणार्थक।

शब्द की नित्यता और अनित्यता के विवाद को यास्क ने भी उठाया है किन्तु उनका दृष्टिकोण व्यावहारिक है। यास्क का कथन है कि शब्दों की उपयोगिता है, क्योंकि उन्हीं से वस्तुओं का नामकरण होता है; वे व्यापक हैं तथा वस्तु-बोध कराने के लिए अन्य सभी साधनों की अपेक्षा सूक्ष्मतर हैं।

अभिप्राय यह कि वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन की दृष्टि से वेदाङ्ग निरुक्त का महत्त्व असन्दिग्ध है। सायण प्रभृति सभी वैदिक भाष्यकारों ने यास्क को प्रमाण माना है।